होगा और पंचायती ढांचा इसलिए कार्यशील नहीं होता, क्योंकि पंचायतों की संवैधानिक स्थिति नहीं है। संविधान में 73 वें और 74 वें संशोधन के द्वारा ग्रामीण पंचायतों और नगरपालिकाओं को संवैधानिक दर्जा दिलवाने का काम नरसिंह राव ने किया। लेकिन इस बार भी वनवासी क्षेत्रों में तो ग्राम सभा को मूल इकाई मानते हुए उन्हें सर्वाधिकार दिये गये थे, पर मैदानी इलाकों में चुनी हुई पंचायतों के पास ही अधिकार रखे गए। ग्राम सभाओं को औपचारिक स्थिति ही प्रदान की गई। इस कारण यही था कि इन पंचायतों को केंद और राज्य के निर्णयों को लागू करवाने वाली स्थानीय इकाई के रूप में ही देखा गया था। सत्ता का विकेंद्रीकरण और ग्रामीणीकरण नहीं किया गया।

दिग्विजय सिंह ने सर के बल खड़े हुए इस पंचायती ढ़ांचे को पैरों पर खड़ा कर दिया है। ग्राम सभाओं को अधिकार दने का मतलब यह है कि पंचायतों के चुने हुए सदस्यों को ग्राम सभा के अधीन रहना पडेगा और इस तरह ग्राम प्रशासन में गांव के सभी लोगों की भागीदारी हो सकेगी। लेकिन क्या सचमुच इसे उस ग्राम स्वराज्य की प्रतिष्ठा बताया जा सकता है, जिसकी वकालत गांधी जी ने की थी?

ग्राम स्वराज्य का तब तक कोई अर्थ नहीं होगा जब तक हम लोगों के स्वविवेक और उनकी योग्यता पर भरोसा न करें। इन पंचायतों से गलतियां भी होंगी, उनको ठीक से सक्रिय करने में समय भी लग सकता है। पर इसके लिए तो बहुत धैर्य की आवश्यकता है, क्योंकि जब तक वे गांव की सारी व्यवस्था को चलाने का अपने भीतर से उत्साह पैदा नहीं करती, ग्राम स्वराज्य लागू हो ही नहीं सकता। ग्राम पंचायतों की स्थापना करते समय सिर्फ इतना ही उल्लेख होना चाहिए था कि गांव की सारी सम्पत्ति और संसाधनों पर उनका अधिकार होगा, उनकी स्वीकृति के बिना इसके बारे में कोई निर्णय नहीं लिया जाएगा और गांवों के अतिरिक्त प्रबंध का दायित्व और अधिकार उनका होगा। इसके बाद यह उन्हें तय करने दीजिए कि उन्हें गांव का प्रबंध कैसे करना है। इतना ही नहीं, शिक्षा और न्याय जैसे मामले में उनके निर्णयों का कार्यपालिका और न्यायपालिका को सम्मान करने की आदत डालनी होगी और इस बात की भी संवैधानिक व्यवस्था होनी चाहिए।

देश में इस समय कोई पांच लाख अस्सी हजार गांव हैं। पर गांव की तरफ हमारा ध्यान ही नहीं है, इसीलिए हम इसकी व्यवस्था करने की बात सोच ही नही पाते। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि पिछले पचास साल में बड़े-बड़े शहर ही हमारा आर्थिक और दूसरी गतिविधियों का केंद्र बनते रहे है। इसलिए गांव के पंड़ित, कारीगर और विशेषज्ञता वाले दूसरे गांवों से निकलकर ऐसे शहरो की तरफ चले गये हैं और गांव मात्र देहाती इलाके होकर रह गय हैं। इस प्रक्रिया को उलटने के लिए भी गांवो को बड़े पैमाने पर साधन चाहिए।

भारतीय मान्यता और आज का भारतीय संविधान

भारतीय सभ्यता इस मूलभूत मान्यता पर खड़ी हुई थी कि मनुष्य स्वभावतः एक विवेकपूर्ण प्राणी है। यह बात उसे मालूम रहती है कि अपना उन्नयन वह तभी कर सकता है जब वह आत्मानुशासन में रहे। उसे अच्छे और बुरे का ज्ञान होता है। लेकिन एसे भी लोग होते हैं, जो अच्छे बुरे में अंतर जानने के बावजूद अपने स्वभाव के कारण बुरी प्रवृत्तियों में पड़ जाते हैं। ऐसे ही लोगों को अनुशासित रखने के लिए राजनीतिक व्यवस्था की आवश्यकता होती है। पर यह व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जिसमें सब लोगों की सहमति से नियम बनाये जाएं। ऐसे ही नियम उचित और व्यावहारिक होते हैं और उन्हें मानने के लिए सब लोग तैयार हो सकते हैं। यही स्वराज्य का मूल मंत्र है।

इसके विपरीत पश्चिमी देशां ने जिस राजनैतिक सिद्धांत को जन्म दिया, उसके अनुसार लोग स्वभावतः उच्श्रृंखल होते हैं और उनमें अच्छे और बुरे का विवेक नहीं होता। इसलिए उनको किसी बाहरी संस्था द्वारा शासित किया जाना आवश्यक है। हमारा आज का संविधान भी इन्हीं राजनीतिक विचारों पर आधारित है। इसमें जिस लोकतंत्र की व्यवस्था की गई है, वह सिर्फ औपचारिक लोकतंत्र ही है, क्योंकि इसमें लोगों को विधायिका के सदस्य चुनने भर का अधिकार है और चुनाव में कौन खड़ा हो कौन नहीं इसमें उनकी कोई भूमिका नहीं है। शासन तो देश में नौकरशाही ही चला रही है।

जब तक पश्चिम के राजनैतिक विचारों पर आधारित यह व्यवस्था चल रही है, क्या गांव में सचमुच स्वराज्य लागू हो सकता है ? लेकिन जैसे-जैसे गांव मजबूत होंगे, राज्य की मौजूदा व्यवस्था भी बदलती चली जायेगी। इसलिए अभी तो इतना ही काफी होगा कि गांवों का गौरव बढ़ना शुरू हो और लोग अपने गांव में अपना गौरव देखते हुए उनकी तरफ लौटना शुरू करें।